THE BOOK WAS DRENCHED

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

प्रश्नोत्तर

(संतमत अथवा राधास्वामी पंथ)

और

गुरु उपदेश

(परम गुरु हुज़ूर महाराज)

—प्रकाशक—

राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा)

294
HS

राधास्वामी संवत् १४२
सन् १९६० ई०

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186731
UNIVERSAL LIBRARY

राधास्वामी दयाल की दया
राधास्वामी सहाय

प्रश्नोत्तर

(संतमत अथवा राधास्वामी पंथ)

और

गुरु उपदेश

(परम गुरु हुज़ूर महाराज)

—प्रकाशक—

राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा)

राधास्वामी संवत् १४२
सन् १९६० ई०

(*Copyright Reserved*)

First Edition	1948	1000
Second Edition	1960	1000

PRINTED BY BABU RAM JADOUN, M. A.
AT THE DAYALBAGH PRESS, DAYALBAGH, AGRA

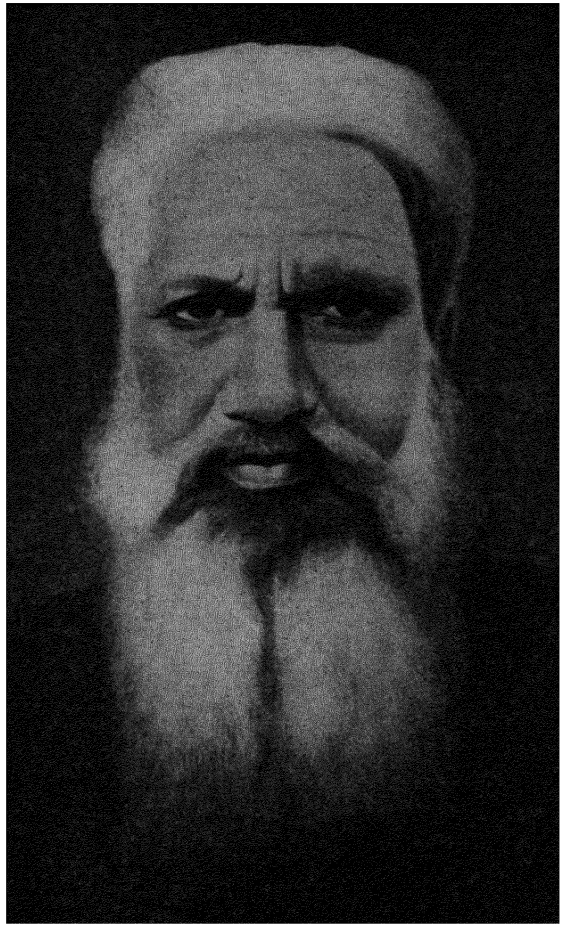

परम गुरु हुज़ूर महाराज

निवेदन

राधास्वामी मत के दूसरे आचार्य परम गुरु हुज़ूर महाराज का जन्म १४ मार्च सन् १८२९ ई० को पीपलमंडी आगरा में हुआ था। सन् १८४७ ई० में उन्होंने डाक विभाग में सर्विस शुरू की और सन् १८८१ में वे पोस्टमास्टर जनरल नियुक्त हुए। इस ऊँचे पद पर नियुक्त होने वाले वे पहले हिन्दुस्तानी थे। ८ जून सन् १८७८ ई० को परम गुरु हुज़ूर स्वामी जी महाराज के गुप्त होने पर वे राधास्वामी मत के दूसरे आचार्य हुए। सन् १८८७ ई० में उन्होंने सर्विस छोड़ दी। परम गुरु हुज़ूर महाराज ६ दिसम्बर सन् १८९८ ई० को गुप्त हुए थे। उन्होंने अपने समय में राधास्वामी मत पर बहुत सी पुस्तकें लिखने की मौज फ़रमाई जिनमें सन्त मत व राधास्वामी मत के सिद्धान्तों पर पूरी तरह प्रकाश डाला गया है।

उन दयाल ने एक छोटी पुस्तक 'प्रश्नोत्तर' और उससे भी छोटी पुस्तक 'गुरु उपदेश' भी रची थी। इन दोनों पुस्तकों को राधास्वामी सतसंग सभा, दयालबाग़ (आगरा) की तरफ़ से दिसम्बर सन् १९४८ ई० में पहली दफ़ा प्रकाशित किया गया था।

'प्रश्नोत्तर' में राधास्वामी मत के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जिज्ञासु के चित्त में उठने वाले कुछ ज़रूरी प्रश्नों के उत्तर ऐसी सरल भाषा में दिये गये हैं कि किसी को भी उनके समझने में दिक़्क़त नहीं होती।

इसी तरह 'गुरु उपदेश' में परमार्थी तरक़्क़ी की इच्छा रखने वाले सज्जनों के लिए कुछ ज़रूरी शिक्षा छोटे छोटे वाक्यों में बहुत ही सरल भाषा में दी गई है।

दोनों पुस्तकें बहुत छोटी हैं, इसलिये दोनों को एक साथ ही प्रकाशित किया गया था और अब उनको दोबारा एक साथ ही प्रकाशित किया जा रहा है।

दयालबाग़ (आगरा)
७ मार्च १९६० ई०

प्रकाशक

प्रश्नोत्तर

भूमिका

इस संसार में जहाँ कोई चीज़ स्थिर नहीं है अथवा सब कारख़ाना मिथ्या और नाशमान और छिन छिन में बदलता रहता है, तहाँ बहुत करके देखा जाता है कि हर एक जीव दुख से घबराता और सुख को चाहता है और, जोकि सब जीव नहीं जान सकते कि असल सुख क्या है, इस सबब से इन्द्रियों के विषय भोगने को ही सुख समझते हैं। अचरज की बात है कि मनुष्य, जो विचार शक्ति और बुद्धि रखते हैं, उन्हीं विषयों के भोगने या मान बड़ाई वग़ैरह में फँसे रहते हैं। और इन सुखों का यह हाल है कि या तो मिलते ही नहीं या पूरे नहीं मिलते और जो फ़र्ज़ करो पूरे मिल भी गए, तो इधर उनके जाते रहने का फ़िक्र लगा रहता है और उधर रात दिन भोगने से वह सुख साधारण हो जाते हैं और उनसे विशेष सुख की चाह यानी तृष्णा पैदा होती है। और जो कोई बीमारी या दुख या किसी रिश्तेदार के घर मौत हो गई, तो सारा सुख दुख रूप मालूम होने लगता है।

२–विचार करने से यह भी मालूम होता है कि जितने सुख, आनंद और स्वाद दुनिया में दिखाई देते हैं, इन सबका भंडार हमारी सुरत अथवा रूह यानी जीवात्मा में मौजूद है। जैसे जब हम कोई चीज़ खाते हैं, उसका स्वाद जिह्वा इन्द्री के सबब व कारण से मालूम होता है, पर जिह्वा जड़ है और सिर्फ़ सुरत का एक बाहरमुखी औज़ार या द्वारा है जिसके ऊपर बैठ कर सुरत की धार हर एक खाने पीने की चीज़ का स्वाद लेती है। इसी तरह सब कर्म इन्द्री और ज्ञान इन्द्रियों का हाल समझना चाहिए। जिस इन्द्री (और भी जिस

चीज़ या भोग) के स्थान पर सुरत की धार मौजूद होती है, वहाँ ही उस इन्द्री के द्वारा उसके भोग अथवा स्वाद का हाल मालूम होता है। जो सुरत की धार न आवे तो किसी तरह से स्वाद मालूम नहीं हो सकता, जैसे कि बेहोशी या ग़फ़लत की हालत में, जब कि सुरत की सब धारें अंदर में खिंची हों, जो किसी की जिह्वा या किसी और इन्द्री पर कोई चीज़ रक्खो, तो उसको कुछ स्वाद नहीं मालूम पड़ेगा।

३—स्वप्न अवस्था में जब कि कोई बाहर का पदार्थ मौजूद नहीं होता और बाहर की इन्द्रियाँ भी सोई होती हैं, पर सुरत और मन अपनी धारों और अंतरी इन्द्रियों के द्वारा सब भोग और सुख हासिल करते हैं। और जो कोई बीमारी या दूसरी तकलीफ़ हमारे स्थूल शरीर में हो, उसकी तकलीफ़ भी स्वप्न अवस्था में मालूम नहीं होती। (स्वप्न, सुषुप्ति, अथवा नींद और गहरी नींद, इन दोनों अवस्थाओं में संसारी लोगों की तवज्जह नीचे के स्थानों में जाती है और सुरत शब्द अभ्यासियों की ऊँचे की तरफ़।) इसलिए जो किसी जतन से कोई मनुष्य, जब और जितनी देर तक चाहे, जाग्रत में स्वप्न की सी अवस्था पैदा कर सके, तो जब तक वह अवस्था रहेगी जिस तरह का सुख चाहे भोग सकता है और संसार और देह के सब दुःखों और क्लेशों से बच सकता है।

४—जो कोई किसी जतन से सुरत के स्थान तक पहुँच जावे, तो बेमदद यानी बिना सहायता किसी अंतरमुखी इन्द्री वग़ैरह के और बे किसी मेहनत और तकलीफ़ के, जब तक उस स्थान में रहे, जो सुख चाहे बहुत आसानी और निर्मलता के साथ और ऊँचे दर्जे का हासिल कर सकता है और सुरत—जिस सूरज (कुल मालिक राधास्वामी) की एक किरन या जिस सिंध की एक बूँद है—जो किसी जतन से उस सूरज या सिंध तक पहुँच जावे, तो जितना अनंत, अनादि और अपार सुख हासिल अर्थात् प्राप्त होना मुमकिन है उसका अंदाज़ा सिर्फ़ अनुभव में किया जा सकता है।

५–ऊपर लिखे हुए जतन हासिल करने को ही सच्चा परमार्थ कहा जा सकता है।

६–संतों ने इस जतन का नाम सुरत शब्द का अभ्यास रक्खा है।

७–इंसाफ़-पसंद लोग यानी न्यायकारी पुरुष जो इस पोथी को पढ़ेंगे वे आप जाँच करेंगे कि संत मत अथवा राधास्वामी पंथ की कैसी बड़ी भारी और क़ुदरती जड़ है और आम तौर पर ज़ाहिर होने से कैसे बड़े दर्जे का यह मत हो सकता है कि इस में सारी दुनिया के मनुष्य शामिल हो सकते हैं। हर एक हाल के मत और पंथ का आदमी, हर एक दुनिया के हिस्से का रहने वाला पुरुष, स्त्री, लड़का, जवान, बूढ़ा इस मत से बराबर लाभ उठा सकता है, और इस तरह पर आम मेल और आपस में मित्र भाव और सच्ची विरक्तता जीव को इस संसार में, और सच्ची मोक्ष और उद्धार अंत में, संत मत अथवा राधास्वामी पंथ के उपदेश पर चलने और उसके मुआफ़िक़ यानी अनुसार अभ्यास करने से प्राप्त हो सकते हैं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न और उत्तर

प्रश्न १—संत मत या राधास्वामी पंथ किसको कहते हैं ?

उत्तर—संत मत या राधास्वामी पंथ सारे संसार के सब मतों की जान है, सब विद्याओं का सिद्धान्त[1] है जिसको संतों ने अति परीक्षा और अभ्यास करके और जीवों पर अति दया करके प्रगट किया है। यही मत है जिसके वसीले[2] से सच्चे मालिक राधास्वामी की पहचान और उनके मिलने का रास्ता और स्थानों का भेद मालूम होकर सच्ची ख़ुशी और उद्धार हासिल हो सकता है। यह मत और उसका अभ्यास ख़ास कर उन मनुष्यों के वास्ते है जिनको सच्चे मालिक राधास्वामी के मिलने की चाह और अपने जीव के कल्याण और उद्धार का सोच[3] है। संसारी चाहों और मान बड़ाई चाहने वालों के वास्ते और भी जिन्होंने परमार्थ को अपनी जीविका[4] का वसीला बना रक्खा है या परमार्थी वादविवाद[5] को मनोरंजन या जी ख़ुश करने के लिये एक खेल कर रक्खा है, यह मत न फ़ायदा करेगा और न उनकी समझ में आवेगा। संतों ने इस मत को सुरत शब्द योग कहा है।।

प्रश्न २—सुरत किसको कहते हैं ?

उत्तर—जैसे संत मत अथवा राधास्वामी पंथ सब मतों की जान है, ऐसे ही सुरत सब पिंडों और पदार्थों की जान है। इसी को रूह या जीवात्मा कहते हैं। इसी के बल से सब पिंड, मन, इन्द्रियाँ वग़ैरह अपना

१—लक्ष्य। २—ज़रिये। ३—चिन्ता। ४—रोज़ी। ५—बहस मुबाहसा।

अपना काम कर रही हैं। इसी में सारे संसार की विद्या और कारीगरी भरी हुई है। जो जिस तरफ़ सच्चे मन से और मेहनत करके तवज्जह करता है, वह उसी तरफ़ से अनगिनत अद्भुत शक्तियाँ हासिल करके अपनी मनोकामना[1] पूरन करता है। पिंड के अंदर सुरत का असली स्थान और ठहराव आँखों के पीछे है और उसका भंडार आदि शब्द में है।

प्रश्न ३—आदि शब्द किस को कहते हैं?

उत्तर—आदि शब्द सबका कर्त्ता और मालिक है। इसी को आदि नाद[2] और आवाज़ ग़ैब[3] कहते हैं। वेद के स्थान से जो शब्द प्रगट हुआ है उसको अनहद और शब्द-ब्रह्म कहा है, फ़ारसी में हुक्म मालिक का और क़ुदरत-कुल कहा है, ईसाई मत में लिखा है कि आदि में कलाम अथवा शब्द था, शब्द मालिक के साथ था और शब्द ही मालिक था। शब्द की महिमा सब मतों में है, पर उसका भेद किसी मत के ग्रन्थों में नहीं है। संतों ने शब्दों की तफ़सील, उनका भेद और उनकी महिमा, कहीं इशारे में और कहीं गुप्त करके और कहीं साफ़ साफ़ प्रगट करके, अपनी बानी में कही है और उसका ख़ुलासा यह है:—

१—प्रथम धुर पद कि जो सब से बड़ा और ऊँचा है कि जिसका नाम स्थान भी नहीं कहा जाता है, उसको राधास्वामी अनामी और अकह कहते हैं। यह आदि और अंत सबका है और सब रचना इसके घेर में है और हर जगह इसी स्थान की दया और शक्ति अंश रूप से काम दे रही है और आदि में इसी स्थान से मौज उठी और शब्द रूप होकर नीचे उतरी। यह स्थान परम संतों का है। सिवाय बिरले संतों के यहाँ और कोई नहीं पहुँचा और जो पहुँचा उसी का नाम परम संत है।

२—राधास्वामी पद के नीचे अगम और अलख दो स्थान बीच में

१—इच्छा। २—शब्द। ३—आकाश वाणी।

छोड़ कर सत्तनाम अथवा सत्तलोक महा प्रकाशवान् और निहायत पाक और निर्मल है और कुल नीचे की रचना का आदि और अंत यही है। संत मत में सच्चा मालिक और कर्त्ता इसी को कहते हैं, और सत्य शब्द का प्रकाश इसी स्थान से हुआ। और इसको महानाद और सार शब्द भी कहते हैं। यह अजर, अमर, अविनाशी और सदा एक रस है। संत इसी पुरुष का रूप यानी औतार हैं और जिसकी क़ुदरत से सोहं पुरुष, परब्रह्म, ब्रह्म और माया प्रगट हुए।

३—तीसरा सोहं पुरुष का शब्द।

४—परब्रह्म का शब्द जिसकी सहायता से तीन लोक की रचना ठहरी हुई है।

५—ब्रह्म शब्द जो कि प्रणव है और जिससे सूक्ष्म यानी ब्रह्मांडी वेद और ईश्वरीय माया प्रगट हुई।

६—माया और ब्रह्म का शब्द जिससे त्रिलोकी की रचना का मसाला तैयार हुआ।

माया शब्द के नीचे विराट पुरुष का शब्द और जीव और मन का शब्द प्रगट हुआ।

आजकल अव्वल तो अभ्यास ही नहीं है और जो कहीं कहीं है, तो नीचे के शब्दों का। अक्सर अभ्यासी विराट शब्द को ही कर्त्ता शब्द मानते हैं।

प्रश्न ४—ऊपर लिखे हुए घट के अंदर के शब्द और बैखरी यानी ज़बानी शब्द में कुछ फ़र्क़ है या नहीं?

उत्तर—हाँ फ़र्क़ है, पहला सूक्ष्म और दूसरा स्थूल शब्द है, पहले को धुन्यात्मक और दूसरे को वर्णात्मक कहते हैं, पहली आवाज़ ब्रह्मांडी यानी आँखों के ऊपर के स्थानों से प्रगट होती है और दूसरी आवाज़ नाभि के स्थान से उठती है। उस जगह उसका नाम परा बानी है, फिर

हृदय और कंठ में होकर, जहाँ उसको पश्यंती और मध्यमा कहते हैं, जिह्वा पर आती है और बैखरी कहलाती है और उसके सबब से सारे संसार का इन्तिज़ाम और बन्दोबस्त हो रहा है। शब्द ही है कि जिसको चाहे एक छिन में हँसा दे या रुला दे या क्रोध में भर दे, मित्र और बैरी बना दे, हाकिम और ताबेदार बना दे। जब कि इस शब्द में जो नीचे और स्थूल स्थानों से पैदा होता है ऐसी बड़ी शक्ति है, तो उस शब्द में जो ऊँचे और सूक्ष्म स्थानों से प्रगट होता है, ज़रूर ज़्यादा बड़ी ताक़त होनी चाहिये। सो वही सूक्ष्म शब्द तीनों लोकों और उनसे ऊपर के लोकों की सब कार्रवाई कर रहा है।

प्रश्न ५—शब्द को आकाश का गुण कहते हैं, इसका क्या मतलब है?

उत्तर—इसका मतलब यह है कि शब्द आकाश की जान है। गुण जौहर यानी रूह को कहते हैं और गुणी, जिसमें वह गुण रहता है। खुलासा यह है कि शब्द चिदाकाश का चेतन करने वाला है।

प्रश्न ६—सब मतों में मालिक के नाम की बड़ी महिमा कही है और ताक़ीद की गई है कि उसका नाम हर वक़्त जपना चाहिये। क्या उस नाम और शब्द में कुछ मेल है?

उत्तर—शब्द ही मालिक का असली नाम है और उसके जपने से यह मतलब है कि हर वक़्त उसकी धुन का ख़्याल रखना चाहिये। राम राम या अल्ला अल्ला या और कोई इसी तरह का नाम बिना भेद और जुगत् के जिह्वा से हर वक़्त जपते रहना बेफ़ायदा है, क्योंकि उससे सुरत का चढ़ना न होगा और न सच्ची मुक्ति प्राप्त होगी। मुफ़स्सिल भेद नाम का सतगुरु वक़्त से मालूम हो सकता है।

प्रश्न ७—सुरत और शब्द में क्या मेल है?

उत्तर—जैसा समुद्र और उसकी लहर में, सूरज और उसकी किरन में। सुरत जो मुआफ़िक़ एक बूँद के है सिंध रूपी शब्द से अलग होकर

कीचड़ रूपी ग़िलाफ़ों या बंधनों में लिपट गई है। संत रूपी लहर, जो हर वक्त समुद्र से निकल कर उसमें फिर जाती रहती है, इस बूँद को अपने साथ ले जाकर ग़िलाफ़ों या बंधनों से छुटकारा यानी मोक्ष दिला सकती है।

प्रश्न ८—बंधन और मोक्ष किसको कहते हैं?

उत्तर—सुरत अपने निज स्थान से उतर कर तीन गुन (सतोगुन, रजोगुन, तमोगुन), पाँच तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश) और चार अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) और दस इन्द्रियों—पाँच ज्ञान इन्द्री (आँख, नाक, कान, ज़बान, त्वचा अथवा खाल) और पाँच कर्म इन्द्रियों (हाथ, पाँव, मुँह, लिंग, गुदा) वग़ैरह में फँस गई है और उसका शरीर और शरीर के संबंधी पदार्थों से ऐसा बंधन पड़ गया है कि उनसे अलग होना मुश्किल हो गया है। इन्हीं बंधनों से छूटने को मोक्ष कहते हैं।

प्रश्न ९—बंधन कै क़िस्म के हैं?

उत्तर—दो क़िस्म के, बाहरी और अंतरी। बाहरी बंधन स्त्री पुत्र संबंधी, धन, धाम, जगत लाज, कुल मर्यादा[1] और अंतरी बंधन देह, इन्द्री, मन, तत्त्व, गुन, और अन्तःकरण के साथ हैं।

प्रश्न १०—सुरत का असली स्थान अथवा भंडार कहाँ है?

उत्तर—दयाल देश में है। दयाल देश से जैसे जैसे सुरत नीचे उतरी है, माया की मिलौनी के सबब से स्थान मुक़र्रर हुए हैं—जैसे सूक्ष्म, विशेष सूक्ष्म, अति सूक्ष्म और स्थूल, विशेष स्थूल अति स्थूल। इस संसार में सुरत अति स्थूल खोलों में गुप्त हो गई है और यह संसार दयाल देश से तीसरे दर्जे पर गिना जाता है।

प्रश्न ११—रचना के तीनों दर्जों का हाल बतलाइये।

१—प्रतिष्ठा।

उत्तर—प्रथम दयाल देश, जहाँ निर्मल चेतन अथवा नूर ही नूर है; दूसरा ब्रह्म और माया देश जहाँ ब्रह्मांडी मन और निर्मल माया के साथ सुरत की मिलौनी हुई है; तीसरा जीव देश, जहाँ पिंडी मन और स्थूल माया के साथ सुरत की मिलौनी हुई है।

प्रश्न १२—माया किसको कहते हैं?

उत्तर—माया उस ग़ुबार का नाम है जो दयाल देश के नीचे चेतन पर ग़िलाफ़ हो रहा है और नीचे की तरफ़ वह ग़ुबार या ग़िलाफ़ ज़्यादा स्थूल होता चला गया है।

प्रश्न १३—जिस तरह सुरत नीचे उतरी, उसके उतार के स्थान तफ़सील के साथ बयान कीजिये।

उत्तर—सुरत का असली स्थान राधास्वामी अनामी पद में है। यहाँ कोई बिरले ही पहुँचते हैं और उन्हीं को परम संत कहते हैं। उस जगह से एक मौज उठी और शब्द रूपी धार होकर नीचे उतरी और दो स्थानों (अगम, अलख) में होकर सत्तलोक में आई। यह स्थान महा प्रकाशवान और निर्मल और चैतन्य है। इस स्थान यानी सत्तलोक के पहुँचे हुए को संत और सत्तपुरुष कहते हैं। इन चारों पदों को दयाल देश कहते हैं और मुसलमान सत्तलोक को हूत कहते हैं। सत्तलोक से दो स्थान, भँवरगुफा और महासुन्न, छोड़ कर सुन्न यानी दसवाँ द्वार है। यहाँ से सुरत ब्रह्मांड और पिंड में फैली। संतों का आत्म पद और फ़क़ीरों का मुक़ाम हाहूत यही है। इस जगह तक सुरत पाँच तत्त्व और तीन गुन और कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीर से न्यारी है। पुरुष और प्रकृति इस जगह से प्रगट हुए। इसको पारब्रह्म पद भी कहते हैं और इस स्थान पर पहुँचे हुए को पूरा साध कहते हैं। सुन्न से नीचे त्रिकुटी है जिसको गगन भी कहते हैं। इसी को ब्रह्म, प्रणव और ओम् कहते हैं और मुसलमानों ने इसको अर्श अज़ीम और आलम लाहूत कहा है। यहाँ से महा सूक्ष्म तीन गुन, पाँच तत्त्व और वेदादिक आसमानी किताब की आवाज़ और कुल रचना का सूक्ष्म मसाला और निर्मल माया प्रगट

हुए। इस स्थान को महा आकाश भी कहते हैं और इस स्थान के मालिक को ब्रह्म, और संत ब्रह्मांडी मन और मुसलमान ख़ुदाय अज़ीम कहते हैं। इसके नीचे सहसदलकमल है। उसको ज्योति निरंजन, शिव शक्ति वग़ैरह भी कहते हैं और संत मत अथवा राधास्वामी पंथ में यहाँ से ही साधना पहले कराई जाती है। इसी को संत निज मन कहते हैं। इसी स्थान से सूक्ष्म तत्त्व (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) और उसके पीछे स्थूल तत्त्व (आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी) और सूक्ष्म इन्द्रियाँ, प्राण, प्रकृतियाँ प्रगट हुईं। इसी स्थान का प्रतिबिम्ब या छाया पहले तीसरे तिल में, जो आँखों के पीछे मध्य में है, और फिर दोनों आँखों में उसकी धार आकर ठहरी हुई है और इसी स्थान यानी सहसदलकमल से चिदाकाश, यानी चैतन्य आकाश जिस को बाज़े ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, सारे पिंड अथवा देह में और कुल रचना में, जो इस स्थान से नीचे है, फैला हुआ है और इसी को व्यापक चैतन्य कहते हैं। यहाँ तक तफ़सील उलवी यानी आसमानी दर्जों की ख़त्म हुई। इसके नीचे छः स्थान (षट चक्र) पिंड में इनकी छाया हैं और उनको सिफ़ली अथवा नीचे के स्थान कहते हैं। पहला चक्र दोनों आँखों के पीछे है जहाँ सुरत का ठहराव है। दूसरा चक्र कंठ यानी गले में है। इस जगह स्वप्न की रचना जीवात्मा लिंग शरीर की मदद से रचता है। देह के प्राण का स्थान यही है। तीसरा चक्र हृदय में है और पिंडी मन का यही स्थान है, संकल्प विकल्प[1] इसी जगह से उठते हैं। ख़ुशी, रंज, आशा, निरासता, डर, निडरता, सुख और दुख वग़ैरह का असर इसी स्थान पर होता है। चौथा चक्र नाभि कमल है और स्थूल पवन का यही भंडार है। पाँचवाँ इन्द्री चक्र–इसी स्थान से पैदावारी[2] स्थूल शरीर की है। छठा गुदा चक्र है। यह चक्र नाभि की तरफ़ से प्राणों को खींचकर नीचे के शरीर यानी टाँगों पाओं वग़ैरह को ताक़त देता है।

यह सब स्थान ऊँचे और नीचे अंतर में हैं। सिफ़ली दर्जे आँखों

१—सोच बिचार। २—उत्पत्ति।

के नीचे तक ख़त्म होते हैं। इस वास्ते पिंड की हद आँख तक है और इसी सबब से इसको नौ द्वार का पसारा भी कहते हैं। आँखों के ऊपर सहसदलकमल के मैदान से ब्रह्मांड शुरू होता है और वही पारब्रह्म कहलाता है और महासुन्न के मैदान के परे दयाल देश है।

प्रश्न १४–बारह कमल क्या हैं? उनका नाम और स्थान तफ़सील के साथ बतलाइये।

उत्तर–ऊपर ज़िक्र किये हुए उलवी और सिफ़ली स्थानों को ही बारह कमल भी कहते हैं और उनकी गिनती नीचे से होती है। उनके नाम और स्थान की मुआफ़िक़ संत मत के यह तफ़सील है:—

(१) गुदा चक्र–चार दल का कमल–गणेश का बासा। जोकि अगले ज़माने में योग अभ्यास इसी जगह से शुरू कराया जाता था, इस सबब से योगियों की देखादेखी गृहस्थी लोग हर एक काम के शुरू में गणेश जी की पूजा करते हैं।

(२) इन्द्री कमल–छः दल का–ब्रह्मा यानी पैदा करने वाली शक्ति का बासा।

(३) नाभि कमल–आठ दल का–विष्णु यानी पालन करने वाली शक्ति का बासा।

इन तीन स्थानों यानी गुदा, इन्द्री और नाभि कमल को मुसलमान नासूत कहते हैं।

(४) हृदय कमल–बारह दल का–शिव शक्ति का बासा।

(५) कंठ चक्र–सोलह दल का–दुर्गा यानी इच्छा शक्ति और आत्मा का बासा।

(६) तीसरा तिल या नेत्र जिसको शिवनेत्र, श्याम सेत वग़ैरह नाम भी कहते हैं–दो दल का–सुरत यानी परम आत्मा का बासा। शुरू में इस जगह सुरत को समेटना चाहिए। इस स्थान के साथ

अंतःकरण की डोर लगी हुई है और अंतःकरण के साथ दसों इन्द्रियों वग़ैरह की। इन तीनों स्थानों यानी हृदय कमल, कंठ चक्र और तीसरे तिल को मुसलमान मलकूत कहते हैं। यहाँ पर सिफ़ली स्थानों की हद है।

(७) सहसदलकमल, सेत श्याम, आठ दल का, ज्योति निरंजन का बासा। यहाँ से दो आवाज़ आसमानी निकलती हैं यानी शब्द प्रगट होता है। उसको पकड़ कर सुरत ऊपर को चढ़ती है।

(८) त्रिकुटी–चार दल का कमल–ओम् का बासा। यह त्रिकुटी संतों की है, जोगेश्वरों की नहीं है। इस को हंसमुखी कहते हैं। इन दोनों कमलों यानी सहसदल और त्रिकुटी को मुसलमान जबरूत और लाहूत कहते हैं।

(९) सुन्न या दसवाँ द्वार–एक दल का कमल–पारब्रह्म का बासा। मुसलमान फ़क़ीर इसको हाहूत कहते हैं। यहाँ उलवी स्थान ख़त्म हुए।

(१०) महासुन्न मैदान–यहाँ चार शब्द और पाँच स्थान गुप्त हैं।

(११) भँवरगुफा–मुसलमान इसको हूतलहूत कहते हैं–सोहं पुरुष का बासा। यह सोहं स्वाँसा का सोहं नहीं है। यह दो स्थान यानी महासुन्न और भँवरगुफा दयाल देश की हद में हैं।

(१२) सत्तलोक–मुसलमान इसको हूत कहते हैं–सत्तपुरुष का बासा। इसके ऊपर तीन पद और हैं। पिछले संतों ने उनको प्रगट करके बयान नहीं किया। अब मौज से इस ज़माने में राधास्वामी दयाल ने उनको साफ़ साफ़ प्रगट करके बयान किया है।

प्रश्न १५–दल किस को कहते हैं?

उत्तर–वृत्तियों और धारों को, यानी पिंडी स्थानों के दलों को वृत्तियाँ कहते हैं, और ब्रह्मांडी स्थानों के दलों को धारें।

प्रश्न १६–जब कि यह सब स्थान अंतर में हैं, तो उनका संबंध यानी रिश्ता स्थूल शरीर से किस तरह का है?

उत्तर—शरीर तीन तरह का है—स्थूल, सूक्ष्म, कारण। स्थूल जो दिखलाई देता है, यह सुरत या आत्मा का एक प्रत्यक्ष खोल और औज़ार है और इसका संबंध सिर्फ़ जाग्रत अवस्था में है और इसके सब दुख सुख वग़ैरह सिर्फ़ जाग्रत में मालूम होते हैं। इसी तरह सूक्ष्म शरीर का संबंध सिर्फ़ स्वप्न अवस्था से और कारण का, सुषुप्ति से है। यानी यह तीन ग़िलाफ़ सुरत के ऊपर चढ़े हुए हैं या यों समझना चाहिए कि सुरत एक चैतन्य शक्ति अनगिनत धारों वाली है। वह धारें पहले निर्मल नूर थीं, दर्जे बदर्जे मिलौनी हुई और जैसे जैसे मिलौनी होती गई, वैसे वैसे आकार बनना शुरू हुआ और वह धारें दर्जे बदर्जे स्थूल होती चली गईं।

प्रश्न १७—इस बात को दृष्टान्त से समझाइये।

उत्तर—सुरत यानी रूह की बराबर सूक्ष्म या उसकी सी ताक़त और बड़ाई वाली कोई चीज़ नहीं है। फिर भी सिर्फ़ समझ में आने के वास्ते पानी का दृष्टान्त दिया जाता है। दृष्टान्त का सिर्फ़ एक अंग लेना चाहिए। पानी पहले अति सूक्ष्म बल्कि अरूप था, फिर गैस रूप हुआ, फिर बादल और भाप बना और फिर मेह के सबब पृथ्वी पर आकर स्थूल रूप हो गया, बाज़ी जगह कीचड़ में मिलकर अति स्थूल रूप हो गया और बाज़ी जगह सर्दी के सबब बर्फ़ बन कर बिलकुल बेहरकत और बेजान हो गया। और आम यह बात है कि बर्फ़ से बादल तक जुदा जुदा सूरतें बदल कर और जुदा जुदा ताक़तें हासिल करके कभी रूपवाला और कभी अरूप हो जाता है, पर जब गैस या उससे ज़्यादा बारीक हो जाता है तो अति बलवान होकर ऊँचे देश में जा समाता है। इसी तरह सुरत का कोई रूप नहीं है, पर मिलौनी होते होते और खोल चढ़ते चढ़ते उन खोलों का रूप दिखाई देता है और जितनी ज़्यादा मिलौनी होती जाती है, रूह की ताक़त उन मिलौनियों में छिपती और समाती जाती है और जब सुरत इन मिलौनियों के खोलों से प्रीति छोड़ कर शब्द में प्रेमपूर्वक जुड़ेगी, तो

उसमें मानिंद उस अग्नि के कि जिसके ऊपर से राख हटा दी जाती है ऐसी ताक़त पैदा होगी जिसके सबब जड़ चैतन्य की गाँठ खोल कर और ब्रह्मांड को फोड़ कर सत्तलोक और राधास्वामी अनामी पद में जा पहुँचेगी और उस वक्त़ आवागमन से सच्चा छुटकारा होगा।

प्रश्न १८—जड़ चैतन्य की गाँठ किसको कहते हैं?

उत्तर—मन, इंद्रियाँ, देह और सब और संसारी पदार्थ और भोग वग़ैरह जड़ हैं। सुरत यानी रूह चैतन्य है। त्रिकुटी के स्थान में इनकी मिलौनी शुरू हुई है। उसी स्थान तक माया का असर है और उसी जगह जड़ चैतन्य की गाँठ शुरू में बँधी है। उस जगह सुरत को, जिन स्थानों में होकर वह नीचे उतरी है उन्हीं स्थानों में दर्जे बदर्जे अभ्यास की मदद से ऊपर की तरफ़ खींचकर ले जाने से, त्रिकुटी में जड़ चैतन्य की गाँठ खुल जावेगी, यानी माया के अंग उसी जगह या उसके नीचे रह जावेंगे, वहाँ से आगे नहीं जा सकते हैं।

प्रश्न १९—सारे ब्रह्मांड का हमारे शरीर से संबंध और उसमें मौजूद होना किस तरह मुमकिन है?

उत्तर—जो कि ब्रह्मांड के स्थान निहायत बड़े हैं और बहुत ही दूरी पर हैं, फिर भी (मिस्ल बिजली के तार के) उनकी डोरी हमारे अंतर में लगी हुई है। जब सुरत शब्द योग की करनी से रूह सारी देह से सिमट कर ऊपर के स्थानों में चढ़ जावेगी, तो जब और जितनी देर तक चढ़ी रहेगी उन असली स्थानों की सैर करती रहेगी, क्योंकि हमारे अंतर में जो स्थान हैं उनकी डोरी बाहर के स्थानों से लगी हुई है और जो धारें आती जाती हैं वह मुआफ़िक़ दूरबीन के हैं जिनके सबब हम उन दूरदराज़ स्थानों को देख सकते हैं। जैसे आँख के स्थान से कुल बाहर की रचना के साथ, मिस्ल सूरज और चाँद और सितारों वग़ैरह के, जो बहुत बड़े बड़े हैं, किरनों की डोरियाँ लगी हुई हैं, जिनके सबब हम उन स्थानों को देखते हैं।

प्रश्न २०—मालिक को सर्वव्यापक कहते हैं। उसके रहने का ख़ास स्थान किस तरह हो सकता है ?

उत्तर—मालिक सर्वव्यापक भी है और ख़ास स्थान में भी है, यानी उसके विशेष और समान[1] रूप का भेद है। जैसे सूरज एकदेशी है और अपने मंडल में सर्वदेशी[2] भी है, यानी उसकी रोशनी उस मंडल में सब जगह मौजूद है।

प्रश्न २१—सुरत यानी रूह को अभ्यास करके ऊपर चढ़ाने से क्या फ़ायदा होता है ?

उत्तर—प्रथम तो सुरत में उन स्थानों के से अच्छे असर पैदा हो जाते हैं। दूसरे जिस वक्त सुरत शरीर को छोड़ेगी, फ़ौरन् उन स्थानों में पहुँचेगी और मुआफ़िक़ उस स्थान के जहाँ वह पहुँचे, बहुत मुद्दत तक और बहुत ठहराऊ आनंद हासिल करेगी और कामादिक विकारों के बस में न आवेगी। और जब सत्तलोक में पहुँच जावेगी, तब माया के घेर से निकल जावेगी और आवागमन बिलकुल छूट जावेगा और अमर अजर हो जावेगी और ख़ुशी और आनंद हमेशा का प्राप्त हो जावेगा और देहियों के संबंधी दुख सुख से बिलकुल बचाव हो जावेगा।

प्रश्न २२—क्या सबूत है कि ऊपर के स्थान बहुत शुद्ध, ठहराऊ और सुखदायक हैं।

उत्तर—जितनी जहाँ चैतन्य शक्ति ज़्यादा है, वहाँ उतना ही विशेष आनंद और अच्छे सामान और ज़्यादा अरसे तक ठहराऊ होते हैं और जहाँ माया बिलकुल नहीं है, वह स्थान भी हमेशा क़ायम रहता है और वहाँ का आनंद भी ज़्यादा से ज़्यादा है।

प्रश्न २३—अभ्यास करने से कामादिक[3] विकार किस तरह बस में आ जावेंगे ?

उत्तर—असल जड़ इन विकारों की ब्रह्मांड में है, पर महा सूक्ष्म तौर

१—सामान्य अर्थात् साधारण २—सर्वव्यापक। ३—काम, क्रोध, लोभ वग़ैरह।

से, और पिंड में इनका ज़हूर सूक्ष्म और स्थूल तौर से होता है। अभ्यास करने से जैसे सुरत ऊँचे स्थानों में पहुँचती जाती है, ऐसे ही ताक़त इन विकारों की घटती जाती है और जब सुरत अभ्यास करके पिंड और ब्रह्मांड के पार पहुँचेगी, तब इन विकारों के असर से बिलकुल अलहदा हो जावेगी।

प्रश्न २४—जो अभ्यासी कामादिक[1] विकारों[2] को बस में कर लेते हैं, उनकी क्या पहचान है?

उत्तर—जब किसी की सुरत पिंड से ब्रह्मांड में और फिर उसके ऊपर दयाल देश में अभ्यास करके पहुँचने लगी, तो कुल विकार उसके दूर हो जाते हैं और उसको ताक़त हो जाती है कि चाहे जिस अंग में, जिस वक्त ज़रूर और मुनासिब समझे, बरताव करे, चाहे न करे। मगर ऐसे शख़्स की पहचान सिवाय अभ्यासी के दूसरा नहीं कर सकता है, अलबत्ता कोई दिन संग करने से कुछ थोड़ा हाल मालूम हो सकता है।

प्रश्न २५—अभ्यास न करने वालों की सुरत कहाँ जाती है?

उत्तर—जो अभ्यासी नहीं हैं उनकी सुरत आवागमन में रहकर चौरासी भोगती है, यानी उनकी रूह पिंड से निकलते ही पहले आकाश में पहुँचते पहुँचते संसार और देह की सुध भूल जाती है और फिर मुआफ़िक़ अपनी ज़बरदस्त भावना या दृढ़ आशा के कर्म अनुसार दूसरे शरीर में भेजी जाती है।

प्रश्न २६—आवागमन किसको कहते हैं?

उत्तर—इस संसार में अनगिनत क़िस्म और हर एक क़िस्म में अनगिनत जोन[3] हैं जिनमें कुल मनुष्य, जानवर, चरिंद[4], परिंद[5], कीड़े, मकोड़े, दरख़्त, झाड़, पहाड़, पत्थर आदिक[6] शामिल हैं। हर एक जीव को मुआफ़िक़ अपने कर्मों के चौरासी भोगनी पड़ती है। और सिर्फ़

१—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। २—दोषों। ३—योनियाँ। ४—चरने वाले जानवर। ५—चिड़ियाँ। ६—वग़ैरह।

मनुष्य देह उत्तम है, जिसमें यह अच्छे कर्म और अभ्यास आदिक जतन करके चौरासी के घेरे से निकल सकता है।

प्रश्न २७—कर्म किसको कहते हैं?

उत्तर—किसी काम के करने को कर्म कहते हैं। निष्काम[1] कर्म को अथवा वह काम जो सिर्फ़ मालिक से मिलने के निमित्त[2] किया जावे, संतों ने परमार्थ के वास्ते बहुत अच्छा माना है और निषेध[3] कर्म का बिलकुल त्याग और सकाम[4] का, जो दुनिया के मतलब के लिये करे, परमार्थ के वास्ते जहाँ तक हो सके त्याग कहा है। मतलब यह है कि जिस कर्म या बचन से कि जो बग़ैर अपने ख़ास मतलब के किया जावे और उससे जानदारों को आराम पहुँचे और उनका फ़ायदा होवे, वह शुभ कर्म है और जिस कर्म या बचन से जो अपने ख़ास मतलब या किसी अपने प्यारे के मतलब के वास्ते किया जावे और जिससे दूसरों को किसी तरह से नुक़सान या तकलीफ़ पहुँचती हो, वह पाप में दाख़िल है। ग़रज़ यह है कि जिस बात को कोई आदमी अपने ऊपर पसंद न करे, उसे दूसरे के ऊपर भी पसंद न करे या जिस तरह वह चाहता है कि और उससे बरतावा करें, वैसा ही औरों से बरतावा करे। दूसरी तरह कर्म की यह तारीफ़ है कि जिस कर्म से दिन दिन मालिक के चरनों की नज़दीकी प्राप्त होवे, यानी सतगुरु सेवा और सतसंग, वह सब से अच्छा और जिससे दूरी हो यानी दुनिया की मुहब्बत और चाह, वह निहायत बुरा कर्म है, और भी जिस कर्म को करते वक़्त या उसके फल भोगने के वक़्त किसी जीव को सुख मिले वह अच्छा और जो दुख मिले वह बुरा कर्म है।

प्रश्न २८—जीव रक्षा, ख़ास कर गऊ रक्षा, जिसका आज कल बहुत चर्चा हो रहा है, संत मत में कैसा कर्म समझा गया है?

उत्तर—संत मत दया का मत है और जैसा कि यह निहायत बड़े

१—कामना रहित। २—लिए। ३—निषिद्ध, वर्जित यानी रोके हुए, ख़राब काम। ४—कामना सहित।

दर्जे का मत है, ऐसे ही निहायत ही बड़े दर्जे की दया का इसमें ज़िक्र है। जीव रक्षा आदिक शुभ कर्म समझे गए हैं पर छोटे दर्जे के और उनके करने के वास्ते सेठ साहूकार राजा आदिक ज़्यादा ठीक हैं। संत मत केवल परमार्थ अथवा फ़क़ीरी का मार्ग है। इसमें निहायत ही बड़े दर्जे की दया का बरतावा है, यानी अपना और दूसरे अधिकारी जीवों का सुरत शब्द की कमाई से उद्धार करना और मालिक के दरबार में पहुँचाना और इस बड़े दर्जे की दया में जीव रक्षा आदिक छोटे दर्जे की दया आप से आप आ जाती है और किसी ख़ास जानदार की ख़ुसूसियत[1] नहीं है, पर जैसे कि दर्जे जीवों के रचना में हैं, उस मुआफ़िक़ उनकी रक्षा मुनासिब है।

प्रश्न २९—ईश्वरी कर्म और जीवी कर्म क्या हैं?

उत्तर—जैसे हमारी सुरत की धारें अनगिनत चारों तरफ़ फैली हुई हैं, इसी तरह क़ुदरती धारें भी फैली हुई हैं और दोनों अपना अपना काम पिंड और ब्रह्मांड में कर रही हैं और उनका परस्पर[2] एक दूसरे पर असर हो रहा है और वह असर हमारी ज़िन्दगानी और मौत से (यानी पैदा होने से मरने तक) बहुत बड़ा मेल रखता है। इन्हीं धारों को संत मत में दो प्रकार के कर्म, जीवी और ईश्वरी, कहते हैं।

प्रश्न ३०—संचित कर्मों को संत किस तरह कटवा देते हैं?

उत्तर—तीन तरह के कर्म हैं जिनके सबब जीव शरीर धारण करके सुख दुख भोगता है। वह यह हैं—क्रियमाण, प्रारब्ध, संचित। क्रियमाण वह कर्म हैं जो इस शरीर में किये जाते हैं और उनके बहुत से हिस्से का फल भी उसी वक्त भोगा जाता है। प्रारब्ध वह कर्म हैं जिनके सबब से शरीर मिलता है और अच्छे और बुरे स्थान में जन्म लेता है। संचित वह कर्म हैं जो हर एक जन्म में अलग जमा होते रहते हैं और फिर प्रारब्ध कर्मों में मिल जाते हैं। जब कोई जीव संतों की सरन लेता है तो प्रेमा भक्ती के प्रभाव से क्रियमाण कर्म, ख़ास कर उनकी

१—विशेषता। २—आपस में।

शाखा बुरे कर्म, तो आगे के वास्ते आप ही नहीं होते और अच्छे कर्म भी जो वह जीव करता है तो वह उनसे फल की इच्छा नहीं रखता, बल्कि अपने तईं उनका कर्त्ता भी नहीं समझता है या उनके करने का अभिमान नहीं करता है। और प्रारब्ध कर्म तो इसी शरीर में भोग लेता है और संचित कर्म ध्यान और अभ्यास की हालत में भोग लिये जाते हैं, यानी संचित कर्मों का एक चक्कर है जो मिस्ल कुए की रहँट के घूमता रहता है। जब जिस कर्म के भोगने का समय आता है उस कर्म के भोगने की चाह पैदा होती है और जो वह चाह ज़बर है तो वह ज़रूर ही भोगा जाता है, पर सुरत शब्द योग अभ्यासी अपने अभ्यास की हालत में समय से पहले ही उन कर्मों को रास्ते में ध्यान के वक्त भोग लेता है और जो कि ध्यान की हालत में स्थूल शरीर में बरतावा नहीं होता है, इसलिये वह कर्म सूक्ष्म शरीर में ही भोगे जाते हैं। दूसरा यह भी सिद्धांत है कि सब कर्म बासना अनुसार भोगे जाते हैं और जब अभ्यासी ने नित्य सतसंग अंतर और बाहर करके जगत की बासना आहिस्ता आहिस्ता त्याग दी और भक्ति और प्रेम के प्रताप से माया के जाल से निकल कर त्रिकुटी में पहुँचता है और वहाँ के महा आनंद को प्राप्त होता है, तो वह माया की हद से निकल गया और उसकी बासना इस तरफ़ की बिलकुल टूट जाती है और संचित कर्मों का चक्कर घूमने से रह जाता है, बल्कि नष्ट हो जाता है। असल में मतलब दोनों सिद्धान्तों का एक ही है।

प्रश्न ३१—भक्ति और उपासना किस को कहते हैं?

उत्तर—मालिक के चरनों में प्रेम प्रीति और प्रतीति का होना भक्ति और उपासना है और यह उसी वक्त सच्चे मन से हो सकता है जब संत सतगुरु और मालिक का अंतर में दर्शन हो। और जोकि सुरत शब्द अभ्यासी को कभी कभी ध्यान और भजन और स्वप्न अवस्था में संत सतगुरु और शब्द स्वरूप मालिक का दर्शन अंतर में होने लगता है, इस वास्ते उसी वक्त से सच्ची भक्ति और उपासना शुरू हो जाती है और दिन दिन प्रेम बढ़ता जाता है। त्रिकुटी में पहुँचने पर यह प्रेम और

भक्ति निर्मल हो जाती है, कर्मों का मैल नहीं रहता और उसके पार चलने से सच्ची और निर्मल भक्ति शुरू होती है और अगम लोक में पहुँचने पर भक्ति पूरन होती है और उसके आगे राधास्वामी अनामी पद में सच्चा और पूरन ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रश्न ३२—ज्ञान किसको कहते हैं ?

उत्तर—सत्तलोक, अलखलोक और अगमलोक के परे पहुँच कर कुल मालिक राधास्वामी दयाल के दर्शन करना और महा आनंद को प्राप्त होकर ऐन[1] शब्द और प्रेम स्वरूप हो जाना—इसको ज्ञान कहते हैं। इस जगह पहुँच कर अभ्यासी कुल माया और क़ुदरत की हद से परे हो जाता है। इसी का नाम अभेद भक्ति और सच्ची मोक्ष है। संत मत में पिछले युगों के कर्म और देवताओं या मूरतों की उपासना और कोरा विद्या-ज्ञान नहीं माना गया है, क्योंकि इससे कुछ हासिल नहीं हो सकता है, वृथा वक्त खोना और बेफ़ायदे तन मन धन का खर्च करना है। और हर एक आदमी की ताक़त भी नहीं है कि पिछले युगों के कर्म और उपासना के क़ायदों के मुआफ़िक़ इस समय में बरताव कर सके। इस सबब से वह कर्म किसी से विधिपूर्वक बनते भी नहीं, पर अहंकार पैदा हो जाता है। इस समय के जीवों की हालत कमज़ोर देखकर संतों ने, और ख़ास कर राधास्वामी दयाल ने, ऐसी जुगत कर्म और उपासना की बतलाई है कि जो हर कोई, अमीर और ग़रीब, हर वक्त और हर जगह बग़ैर दूसरे की मदद के, आसानी के साथ कर सकता है और उसका भारी फ़ायदा थोड़े दिनों में उठा सकता है और वह जुगत यह है—

(१) सतगुरु वक्त की सेवा तन मन धन से, जिस क़दर बन सके, और उनका सतसंग बाहरी चित्त देकर, और सुमिरन नाम का अंतरी, और सच्चे मुहताज और ग़रीब की, बग़ैर लिहाज़ नामवरी या पर्व के दिन के या मुक़र्रर किये हुये त्योहार वग़ैरह के, अपनी ताक़त के मुआफ़िक़

१—पूर्ण रूप से।

मदद करना, और संतों की बानी का, जिसमें सिवाय मालिक की तारीफ़ और प्रेम और भक्ति और ज़िक्र अभ्यास अंतरी सुरत शब्द योग के और कुछ बयान नहीं किया है और क़िस्से और कहानी वग़ैरह जिसमें नहीं हैं, तवज्जह और ग़ौर के साथ हर रोज़ पाठ करना, यह कर्म है।

(२) और जो जुगत कि अंतरी ध्यान की सतगुरु बतलावें उसको चित्त लगा कर करना, और अंतर में सुरत लगा कर शब्द को सुनना, और बाहर सतसंग में जाकर चित्त से ग़ौर के साथ सतगुरु वक्त या सच्चे प्रेमी सतसंगी के बचन सुन कर और उनमें से अपने लायक़ बातें छाँट कर उन पर सच्चे शौक़ और प्रेम से जितना बन सके चलना, और सच्चे मालिक राधास्वामी के चरनों में दिन दिन प्रीति और प्रतीति यानी इश्क़ और यक़ीन और प्रेम का बढ़ाना, यह उपासना है।

(३) और जब यह दोनों बातें ठीक ठीक बन आवें, तब सच्चे मालिक राधास्वामी के स्वरूप का अंतर में प्रकाश दिखलाई देना और उनका दर्शन करना। इस तौर पर आहिस्ता आहिस्ता अभ्यासी ख़ुद शब्द स्वरूप हो जावेगा। इसी का नाम ज्ञान है।

प्रश्न ३३—सुरत पिंड में किस तरह आती है और किस तरह निकलती है?

उत्तर—मालिक की क़ुदरत से वक्त पैदा होने के सुरत ज़बर बासना और कर्म के अनुसार देह में प्रवेश होती है और उसकी छाया नीचे के चक्रों में आहिस्ता आहिस्ता पड़ जाती है और प्राण वग़ैरह फ़ौरन् अपना काम शुरू कर देते हैं और जब शरीर छूटने लगता है, यानी मौत का समय पास होता है, तो सुरत का भास और तवज्जह, निहायत बेकली और बेहोशी के साथ, गुदा चक्र से खिंचने शुरू होते हैं और आहिस्ता आहिस्ता आँखों तक पहुँचते हैं और वहाँ से सुरत तीसरे तिल में होकर निकल जाती और न्यायकारी मालिक के सामने जाकर फिर कर्म बासना और समय अनुसार दूसरा जनम लेती है। सुरत के आने और

जाने का हाल हर एक जीव के पैदा होने और मौत के वक्त़ देखा जा सकता है।

पर सुरत शब्द योग अभ्यासी की सुरत के निकलने का दूसरा रास्ता है, यानी वह हर रोज़ सुरत को सिमटाते सिमटाते और ऊपर को चढ़ाते चढ़ाते ऐसा अभ्यास कर लेते हैं कि बग़ैर बेकल और बेहोश होने के सुरत के भास और तवज्जह और आप सुरत को तीसरे तिल में और वहाँ से ऊँचे स्थान में, जहाँ तक उसके अभ्यास की पहुँच है, पहुँचाता है। बल्कि मौत से पहले भी तकलीफ़ वग़ैरह के वक्त़ या जब चाहे अपनी सुरत को ऊँचे स्थान पर पहुँचा कर तकलीफ़ से बच जाता है और ब्रह्मांड और दयाल देश यानी राधास्वामी दयाल के चरनों से अमीरस की धारा पीकर महा आनंद को प्राप्त होता है।

प्रश्न ३४—संत मत कब से जारी हुआ?

उत्तर—संत मत हमेशा से है। शुरू में इस मत का प्रगट उपदेश देने से पहले प्राणायाम आदिक संजम[1] और षट चक्र बिंधवाये जाते थे, जिसमें क़रीब क़रीब सारी उम्र बरबाद होती थी और फिर भी पूरा काम नहीं होता था और जो ज़रा परहेज़ में फ़र्क़ पड़ता था, तो बहुत से ख़तरे और विघ्न हो जाते थे। इसके बाद कलयुग में कबीर साहब आदिक संतों ने प्राणायाम का कराना, षट चक्रों का बिंधवाना छुड़ा दिया और आँखों के रास्ते सहसदलकमल से अभ्यास कराना शुरू किया और इस रास्ते का ज़िक्र अपनी बानी में, कहीं इशारे में और कहीं गुप्त करके, बयान किया और अब इस ज़माने में राधास्वामी दयाल ने जीवों पर अति दया करके इस रास्ते के भेद को बहुत प्रगट करके बयान किया है।

प्रश्न ३५—ज़्यादा मशहूर आचार्य, संत और साध कौन कौन हुए हैं?

उत्तर—कबीर साहब, गुरू नानक साहब, पलटू साहब, जगजीवन साहब, दादू साहब, तुलसी साहब और अब इस ज़माने में राधास्वामी दयाल परम संत औतार हुए हैं।

१—यम, नियम इत्यादि।

प्रश्न ३६—संतों को सत्तपुरुष का औतार किस तरह कहते हैं, यानी मालिक किस तरह पर अपनी कुल ताक़त और कुल अक़्ल और कुल इल्म इस देह में ज़ाहिर कर सकता है ?

उत्तर—मालिक अक़्ल कुल, विद्या यानी इल्म कुल, और कुल नेकियों और उम्दा सिफ़तों[1] का भंडार और खज़ाना है और यह सिफ़तें जीव में भी (उसकी निस्बत बहुत ही कम) मौजूद हैं और इसी सबब से संत मत में कहा है कि मालिक मिस्ल सिंध और जीव मिस्ल बूंद के है। सब जीव मिस्ल उस बूंद या लहर के हैं जो समुद्र से निकल कर कीचड़ और मिट्टी में मिल गई है या उनसे घिर गई है, पर संतों की सुरत मिस्ल उस लहर के हैं जो समुद्र से ज्वार भाटे के वक्त दरिया में गुज़र कर कोसों दूर जाती रहती है और फिर समुद्र में आती रहती है। इसलिये हर एक ऐसी लहर को समुद्र ही कहा जा सकता है और हर एक यह लहर, जहाँ तक उसका गुज़र होता है, वहाँ तक की कीचड़ व मिट्टी में मिली हुई या घिरी हुई लहरों को भी समुद्र में ले आती है, यानी संतों की सुरत की डोरी मालिक के चरनों तक लगी हुई है। जब देह में उनकी सुरत उतरती है तब वह जीव दशा में बरतते हैं और जब ऊपर चढ़कर सत्तलोक में पहुँचती है, तो उनमें और मालिक में भेद नहीं है।

प्रश्न ३७—पिछले संतों की सिद्धि शक्ति के हाल, जो उनके मत की किताबों में लिखे हैं, वह सही हैं या ग़लत ?

उत्तर—जो हाल उनकी सिद्धि शक्ति के लिखे हैं वह असल में उनकी अंदर की चढ़ाई का हाल है। अभ्यास के समय जो स्थान उनको दिखलाई दिए या जो जो बातें पेश आईं या जिन जिन रूहों से मिलना हुआ, उनकी कैफ़ियत और हाल बयान किया है वह सब सही है। पर जो लोग इन बातों का होना बाहर समझते हैं, ग़लत है।

प्रश्न ३८—हक़ीक़त में संत बाहर सिद्धि शक्ति दिखा सकते हैं या नहीं ?

१—गुणों।

उत्तर—अगर्चे संत हर तरह से शक्तिमान् और समर्थ हैं, फिर भी वह हमेशा, या जहाँ तक हो सकता है, गुप्त रहना और मालिक की मौज में चलना मुनासिब समझते हैं और जब कोई ख़ास मसलहत या ज़रूरत होती है, तब वह कोई ग़ैर मामूली काम या अपनी ताक़त का प्रकाश बाहर करते हैं। फिर भी जैसे अगिनी के पास जाने से ज़रूर गर्मी मालूम होती है, गंधी[1] की दूकान के पास जाने से ज़रूर सुगंध आती है, इसी तरह संतों के सन्मुख होने से, उनके भजन और उनके अंतर में निहायत ऊँचे स्थान की बैठक के प्रताप से, हर एक परमार्थ का खोजी, मुआफ़िक़ अपने अधिकार के, कुछ न कुछ आनंद और शान्ति को प्राप्त होता है और जो सच्चे परमार्थी हैं, उन पर ख़ास दया वास्ते तरक़्क़ी अंतर के आनंद और सुरत और मन की चढ़ाई के हमेशा होती रहती है। जो इस तरह की बातों को सिद्धि शक्ति[2] कहा जावे, तो संतों के यहाँ ऐसी बातें रात दिन होती रहती हैं। यही सच्ची सिद्धि शक्ति है और उनके सच्चे सतसंगी सच्चे मालिक की दया और क़ुदरत की कार्रवाई को अपने कारोबार में हमेशा अंतर और बाहर देखते हैं। इसमें सब सिद्धि और शक्ति आ गई।

प्रश्न ३९—संत सतगुरु की क्या पहचान है?

उत्तर—प्रथम यह पहचान है कि जो सत्तलोक के बासी हैं, उन्हीं की संत पदवी हो सकती है और जो शब्द मार्ग का उपदेश करते हों और भेद बतलाते हों और अंतर में आप शब्द स्वरूप हों।

दूसरे, जब कोई प्रेमी और अधिकारी खोजी उनके सामने जावे, तो उसके सुरत और मन आप से आप सिमटें और ऊपर को चढ़ने लगें और उसका आनंद प्राप्त हो।

तीसरे, उनके बचन बहुत ही संक्षेप करके और गहरे और असर

१—इत्र बेचने वाला। २—पुराने ज़माने में बहुत से योगियों को साधन करने से सिद्धियाँ व शक्तियाँ प्राप्त हुईं जिनका उन्होंने अक्सर दिखावा करने में इस्तेमाल किया।

वाले हों और सुनने वाला जैसे अधिकार और दर्जे का हो, उसी घाट से उसकी तसल्ली की जावे और वह क़ायल हो जावे।

चौथे, जो बिना वादविवाद[1] के सच्चे दिल से प्रतीति ले आवे, उसको अंतर में कुछ परचा देवें और आनंद प्राप्त करावें।

पाँचवें, जिनकी रहनी मिस्ल कथनी[2] के हो।

छठे, जो अपने सब सच्चे सतसंगी और सतसंगिनों की अंतर और बाहर सम्हाल रखते हों।

प्रश्न ४०—संत मत और दूसरे संसारी मतों में क्या भेद है?

उत्तर—संसार के और सब मतों में अक्सर प्रवृत्ति यानी दुनियादारी और निवृत्ति यानी परमार्थ दोनों का ज़िक्र है, बल्कि प्रवृत्ति का बहुत। और संत मत में केवल निवृत्ति का ही ज़िक्र है, यानी सच्चे मालिक का भेद और महिमा और उसके चरनों में, प्रेम के साथ सुरत शब्द मार्ग की कमाई करके, पहुँचने की जुगत वर्णन की है। और जिन बातों का, या ऊपर की रूहानी रचना (लोकों) का वेद, उपनिषद् और और दूसरे मतों की किताबों में सिर्फ़ गुप्त करके या इशारे में या निहायत संक्षेप के साथ ज़िक्र हुआ है, संतों ने आप उन बातों या स्थानों को देखकर विस्तार पूर्वक ज़िक्र किया है। और संतों का सिद्धांत[3] और मतों के सिद्धांत से बहुत ऊँचा है और जोकि संत मत में सिर्फ़ अंतरी अभ्यास का, मन और सुरत के साथ, भेद कहा है और कोई बाहर की रस्में और पूजा की क़ैद नहीं है, इस सबब से हर एक मत और गिरोह और मुल्क और हिस्से ज़मीन के आदमी, बग़ैर किसी तरह अपने मत की बाहरी रस्में तोड़ने के, संत मत में शरीक होकर सच्ची मुक्ति हासिल कर सकते हैं, क्योंकि यह मत रूहानी है यानी रूह के उद्धार का इसमें ज़िक्र है और रूह सब मनुष्यों की एक सी है और उसके उद्धार की हर एक को बराबर ज़रूरत है।

१—बहस मुबाहसा। २—बचन। ३—लक्ष्य, पहुँचने का अंतिम स्थान।

प्रश्न ४१—संत मत में मुआफ़िक़ और मतों के किताबी अथवा पोथियों के प्रमाण वग़ैरह माने जाते हैं या नहीं ?

उत्तर—संत मत में अव्वल खोजी अपनी आँख और बुद्धि से जो कुछ कि कहा जाता है अपने अन्तर में और कुल जिस्मों में ग़ौर और समझ करके देख ले कि क़ानून क़ुदरत का सब जगह यकसाँ[1] होना चाहिये और जब यह समझ खोजी की दुरुस्त हो जावे, तब चाहे जिस किताब से, जो सच्चे संत या सच्चे साध की बनाई है, मुताबिक़त कर ले[2]। सिवाय इसके उन मतों के उसूल से, जो सच्चे अभ्यासी आचार्यों के जारी किये हुए हैं, मुताबिक़त हो सकती है, पर संतों का सिद्धांत और मतों के सिद्धांत से नहीं मिल सकता, क्योंकि यह सब रास्ते में रह गये और संत धुर स्थान तक पहुँचे। और विद्या और बुद्धि के मत वालों और उनके ग्रन्थों से संत मत के उसूल मुआफ़िक़ नहीं हो सकते हैं। संतों ने जो कुछ कि कहा है अंतर में क़ुदरत का भेद कहा है और वह भेद हर जगह यकसाँ है। और बुद्धिमानों का मत दुनिया के ज़ाहिरी हाल और कैफ़ियत के मुआफ़िक़ है, असलियत से रूह या किसी और चीज़ों की उनको ख़बर नहीं है। और संत अपने बचन में किसी पुरानी बानी या गुज़रे हुए लोगों के बचन का प्रमाण देना मंज़ूर नहीं फ़रमाते, क्योंकि ऐसा यक़ीन कच्चा होता है और उसका एतबार नहीं और ऐसे समझने वाले लोगों की समझ बूझ भी नहीं बढ़ती, बल्कि औरों के बचन के आसरे रहते हैं। और इसी को टेक कहते हैं और ऐसी टेक संतों को नापसंद है, क्योंकि इसमें जीव का असली फ़ायदा नहीं बल्कि नुक़सान होता है।

प्रश्न ४२—सतसंग किसको कहते हैं और वह कितने क़िस्म का है ?

उत्तर—सतसंग दो क़िस्म का है, अंतरमुखी और बाहरमुखी। मालिक के साथ संग करना यानी भजन में बैठ कर शब्दगुरू से मिलना सतसंग अंतरमुखी है। और सतगुरु वक्त के दर्शन करना, उनका बचन

१—एक जैसा। २—मुताबिक़त कर ले—मेल मिला ले।

सुन कर उस पर अमल करना, या जहाँ वह इजाज़त दें और जहाँ संतों की बानी का पाठ या अर्थ या परमार्थी चर्चा होती हो जाना, बाहरमुखी सतसंग है। मालूम होवे कि संतों की बानी में महिमा सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी की और सुरत शब्द मार्ग और उसके अभ्यास करने वाले की हालत, जो दिन दिन बदलती जाती है, और वर्णन प्रेम प्रीति का सतगुरु के चरनों में और हाल मन इंद्रियों के बिकारों का और जतन उनके दूर करने का वर्णन किया है।

प्रश्न ४३—सतसंगी किसको कहते हैं?

उत्तर—कुल मनुष्य जिन्होंने सतगुरु वक्त से उपदेश लिया हो और सुरत शब्द योग का अभ्यास करते हों, चाहे वह साधू हों या गृहस्थी, पुरुष हों या स्त्री, सतसंगी कहलाते हैं।

प्रश्न ४४—साधू और गृहस्थी के अधिकार में कुछ फ़र्क़ है या नहीं?

उत्तर—संत मत में ज़ाहिरी त्याग और ग्रहण बहुत कम दर्जे का समझा गया है। फिर भी जिसके जितने बंधन इस संसार में कम हैं, उतना ही उसको ज़्यादा मौक़ा इस अभ्यास का और आनंद की प्राप्ति का मिलता है और इस अंग में[1] साधू ज़्यादा अधिकारी हैं, पर असल में त्याग और ग्रहण मन से है। जो मन से संसार का त्यागी है, उसका दर्जा निहायत बड़ा है और वह संत मत को बहुत जल्दी और अच्छी तरह समझ कर पूरा फ़ायदा उठा सकता है, चाहे वह गृहस्थ में हो और चाहे बिरक्त[2]। और जो मालिक के चरनों का प्रेम मन में नहीं है, तो गेरुवा कपड़े रँग लेना या सर मुँड़ा कर घर-बार, स्त्री, पुत्र वग़ैरह को छोड़ देने से संत मत में कोई बड़ाई नहीं समझी जाती है और ऐसे भेषी साधुओं और संसारी गृहस्थियों का एक दर्जा है, बल्कि इस वक्त में राधास्वामी दयाल किसी से उसकी गृहस्थी और रोज़गार नहीं छुड़ाते हैं और फ़रमाते हैं कि गृहस्थ में रह कर, अगर शौक़ सच्चा है, तो भजन ज़्यादा आसानी और रस के साथ बन सकेगा।

१—अंग में—ख्याल से। २—संन्यासी।

प्रश्न ४५—स्त्री और पुरुष अर्थात् मर्द और औरत का यकसाँ अधिकार है या कम ज़्यादा ?

उत्तर—अपने कल्यान और उद्धार की जैसी पुरुष को ज़रूरत है, ऐसी ही स्त्री को। और जितनी अक़्ल वग़ैरह पुरुष में होती है, कमोबेश उतनी ही स्त्री में भी होती है बल्कि संत मत में, जो प्रेम और भक्ति का मार्ग है, इसमें अक्सर औरतें ज़्यादा जल्दी फ़ायदा उठाती हैं, क्योंकि उनमें क़ुदरती प्रेम और भाव अंग ज़्यादा हैं। इस वास्ते जैसे कि हर एक काम को स्त्री और पुरुष मिल कर के करते हैं और शास्त्र में स्त्री को अर्धाङ्गी[1] कहा है, इसी तरह संत मत में भी स्त्री और पुरुष का बराबर अधिकार है। और आजकल हुज़ूर राधास्वामी दयाल की ऐसी भारी दया जीवों पर है कि वह स्त्री और पुरुष दोनों को बराबर उपदेश देते हैं। पुरुष को सतसंगी और स्त्री को सतसंगिन कहते हैं। और बाज़ी इज़्ज़तदार नेक और पाक[2] स्त्रियाँ इस वक्त में बहुत ऊँचे दर्जे पर पहुँची हुई हैं।

प्रश्न ४६—सुरत शब्द योग का अभ्यास किस तरह किया जाता है ?

उत्तर—जो शब्द ऊँचे देश से नीचे देश को घट में आ रहा है और जिसकी आवाज़ हर एक मनुष्य के अंतर में हर वक्त जारी है, उसमें सुरत यानी रूह को, साथ तवज्जह के, जोड़ कर ऊपर को चढ़ाते हुए पिंड और ब्रह्मांड के पार दयाल देश में पहुँचाना सुरत शब्द योग का अभ्यास करना है।

प्रश्न ४७—जब शब्द की धार नीचे आ रही है, तो उसके सहारे सुरत की धार ऊपर को किस तरह चढ़ेगी ?

उत्तर—जैसे मछली जल की धार में, जो किसी ऊँचे स्थान से नीचे को गिर रही हो, उस धार के सहारे ऊपर को चढ़ जाती है।

१—अर्धांगिनी, यानी पुरुष का आधा शरीर। २—पवित्र।

मुफ़स्सिल[1] भेद इसका सतगुरु वक्त से, या उनकी इजाज़त लेकर किसी सच्चे अभ्यासी सतसंगी से, मालूम हो सकता है।

प्रश्न ४८—उपदेश की क्या रीति है?

उत्तर—उपदेश की कोई ख़ास रीति नहीं है। जिस वक्त कोई अधिकारी जीव यानी सच्चा शौक़ वाला आवे, उसी वक्त उसके सामने मत का निर्णय किया जाता है। जो उसकी समझ में मत अच्छी तरह आ जावे, तो क़रीब पौन घंटे में उपदेश दिया जाता है। और राधास्वामी दयाल की दया से यहाँ तक आसानी है कि जिस जीव को मन से सच्चा शौक़ हो और उसको किसी सबब से आगरे में आने का मौक़ा न मिल सके, तो उसको लिखकर उपदेश पहले दर्जे के अभ्यास का भेज दिया जाता है। और दर्जे दो हैं, पहला सुमिरन और ध्यान, दूसरा भजन।

प्रश्न ४९—अभ्यास की क्या रीति है?

उत्तर—भजन यानी अंतर में आकाशी शब्द का श्रवण करना और उसके आसरे सुरत का चढ़ाना, ध्यान यानी अंतर में स्वरूप पर मन और दृष्टि और सुरत को जमाना, और सुमिरन यानी ज़बान दिल से नाम की याद करना—यह तीनों अभ्यास की जुक्ती हैं। जो पूरा अधिकारी है, उसके वास्ते भजन मुख्य और ध्यान सुमिरन गौन अंग में[2], और उससे कमतर[3] के वास्ते ध्यान या सुमिरन मुख्य और भजन गौन अंग में समझना चाहिये। या यों कहो कि जो पहले दर्जे के हैं, वह मन और सुरत को एकाग्र करके, यानी अभ्यास के वक्त सब अंतरी और बाहरी ख़्यालों और कामों को मन से हटा कर, भजन यानी शब्द के सुनने में लगें और जो दूसरे दर्जे के हैं, वह भजन के वक्त मन और सुरत को एकाग्र करने के वास्ते, पहले थोड़ी देर सुमिरन और ध्यान करें और फिर भजन में लगें। और दोनों को चाहिये कि फ़ुरसत के वक्त संतों की बानी का थोड़ा पाठ अर्थ सहित करें और उसको ख़ूब सोच

१—पूरा। २—गौन अंग में—अप्रधान रूप से। ३—घटिया अधिकार वाले।

विचार कर समझें और जिस क़दर हो सके उस पर अमल करें। जो तीसरे दर्जे के हैं, वह सतगुरु वक्त की सेवा और सतसंग बाहरी करें और सुमिरन और ध्यान भी, जिस क़दर बन सके, मन और चित्त एकाग्र करके करें और संत बानी का पाठ समझ समझ कर करें और जिस क़दर हो सके उन बचनों पर अमल भी करें। मुफ़स्सिल भेद इसका सतगुरु वक्त से मिल सकता है और वे ही हर एक के दर्ज़े के हाल की जाँच कर सकते हैं।

प्रश्न ५०—सेवा किसको कहते हैं?

उत्तर—सतगुरु वक्त की आज्ञा में सच्चे मन से चलना और जो जुगत वह बतावें उसका अंतर अभ्यास चित्त लगाकर करना, अंतरी सेवा है और चित्त लगा कर सतगुरु और साध का सतसंग करना और बानी का पाठ करना और सुनना और सतगुरु और सतसंगियों यानी साधना करने वालों की बाहर की सेवा, जब जब जैसे मिल जावे, उसको उमंग और प्रेम से साथ करना, यह बाहरी सेवा है।

प्रश्न ५१—सच्चे परमार्थी की क्या पहचान है?

उत्तर—जिसके मन में मालिक से मिलने की सच्ची चाह और बिरह हो, जो अंतर में मालिक के सिवाय किसी पर भरोसा न रक्खे, जो सिवाय सच्चे मालिक और सतगुरु के किसी दूसरे का आसरा न रक्खे, जो मालिक के दरबार तक पहुँचने के जतन को सब से मुख्य समझे और इस जतन में, जो ज़रूरत हो, तो संसारी सब पदार्थों को भेंट कर दे—

विषयन[1] से होय उदासा। परमारथ की जा मन आसा॥ १॥
धन संतान प्रीति नहिं जाके। जगत पदारथ चाह न ताके॥ २॥
तन इन्दी आसक्त[2] न होई। नींद भूख आलस जिन खोई॥ ३॥
बिरह बान जिन हिरदे लागा। खोजत फिरे साध गुरु जागा[3]॥ ४॥

प्रश्न ५२—सच्चे परमार्थी अभ्यासी का कैसा बरताव होना चाहिये?

१—भोगों। २—लीन। ३—जागे हुए।

उत्तर—कम बोलना, कम खाना, कम सोना, संसारी कामों में सिर्फ़ ज़रूरत के मुआफ़िक़ बरताव रखना और उस बरतावे को सचाई के साथ बरतना, मालिक का भजन, सुमिरन और ध्यान निहायत प्रेम और शौक़ और सचौटी के साथ जितनी दफ़ा और जितनी देर बन सके ज़रूर करना, सतगुरु वक्त़ की सेवा उनकी मर्ज़ी के मुआफ़िक़ सच्चे मन से सच्चा भाव लेकर करना, मांस मदिरा[1] और दूसरी नशे की चीज़ों को काम में हरगिज़ न लाना, जहाँ तक हो सके सतसंग में हुज़ूर राधास्वामी दयाल के हाज़िर होना और जो ऐसा सतसंग न मिल सके तो अकेले बानी का थोड़ा पाठ विचार विचार कर और उसको अपने ही ऊपर घटा कर ऐसा ख़्याल करके कि सतगुरु हमसे ही कह रहे हैं करना, कुसंग यानी संसारियों के संग से हमेशा बचते रहना, समय यानी फ़ुरसत के वक्त़ को व्यर्थ न खोना, जितना और जहाँ तक जल्दी हो सके बाहरमुखी बातों से हटकर अंतरमुख वृत्ति करना और फ़िज़ूल और नामुनासिब चाहें संसार के धन, मान और भोगों की प्राप्ति के वास्ते न उठाना।

प्रश्न ५३—अंतरमुखी और बाहरमुखी वृत्ति किसको कहते हैं?

उत्तर—सुरत जो इन्द्री द्वारे बाहर के संसारी पदार्थों में लिपायमान[2] हो रही है, उसको बाहरमुखी वृत्ति कहते हैं। उसको अंतर में उलटना और संसारी पदार्थों से हटाना और मालिक के चरनों में सच्चे होकर प्रेम प्रीति और भाव करना और उसके नाम और स्वरूप की हर वक्त़ याद करना, इसको अंतरमुखी वृत्ति कहते हैं?

प्रश्न ५४—अंतरमुखी वृत्ति किस तरह हो सकती है?

उत्तर—त्यागियों और गृहस्थियों के वास्ते अंतरमुख वृत्ति करने के जुदे जुदे जतन हैं। प्रथम जिसने कुल संसारी बंधन तोड़ कर सतगुरु राधास्वामी दयाल के चरनों की सरन ली हो और जिसके खाने पीने और पहनने और दूसरी ज़रूरतों का सतगुरु को फ़िक्र हो, ऐसे त्यागी

१—शराब। २—लिपटा हुआ।

पर फ़र्ज़ है कि कम से कम एक घंटे बानी का पाठ दो या तीन मरतबे करके, तीन घंटे ध्यान और सुमिरन और तीन घंटे भजन नित्य नियम से किया करे और जब सतसंग मिले, तो ज़रूर उसमें शामिल होवे और इस हालत में अलहदा बानी के पाठ की ज़रूरत न होगी और सुमिरन भजन भी दो दो घंटे काफ़ी होगा। और हर वक्त मन की निरख परख यानी चौकीदारी करता रहे और, जहाँ तक हो सके, नामुनासिब ख़्याल और गुनावनों से मन को रोके और पूरी होशियारी रक्खे कि मन उसका बुरे कामों में तन को न खींच सके। कामादिक विकारों और इंद्रियों के बाहरमुखी बिलास से, मसलन् राग और नाच देखना और सुनना, मेले और तमाशों में जाना, बाज़ार की सैर करते फिरना, क़िस्से कहानी की किताबों का पढ़ना, चौपड़, शतरंज, गंजफ़ा[2] वग़ैरह खेल खेलना, भंग, गांजा, चरस, अफ़यून, चंडू, मदक वग़ैरह नशे की चीज़ें जिनसे ख़ुश्की, ग़फ़लत और सुस्ती हो, और अच्छे खाने पहनने की बासना मन में रखना वग़ैरह वग़ैरह बातों से बिलकुल परहेज़ करे और संसार के बेठहराऊ होने की और अपनी मौत की हमेशा याद रक्खे। तन मन धन और सुरत से सतगुरु वक्त की सेवा करे और उनकी आज्ञा में रहे। जब कोई विकार ज़्यादा सतावे, तो सतगुरु से उपाय पूछे और जिस तरह वह कहें अमल करे।

दूसरे—गृहस्थी के वास्ते सब से ज़्यादा ज़रूरी बात यह है कि जहाँ तक हो सके संसारी बंधनों को ढीला और हल्का और ज़रूरत के मुआफ़िक़ रक्खे और जिन संसारी बातों का उससे कुछ ताल्लुक़ न हो, उनमें हरगिज़ दख़ल न दे। हर एक काम को सचाई से करे और उसके नतीजे को मालिक की मौज पर छोड़ दे। सुख दुख और विषयों आदिक में ज़्यादा आसक्त न हो। सतगुरु वक्त और अभ्यागत[3] आदिक की यथाशक्ति[4] सेवा करे। सुबह और शाम कम से कम एक घंटे सुमिरन और ध्यान और एक घंटे भजन, और जो बन सके तो तीन चार घंटे, यही काम करे और सतसंग जब जब मिले ज़रूर करे और थोड़ा बानी

१—गाना। २—ताश। ३—अतिथि। ४—अपनी शक्ति के मुताबिक़।

का पाठ समझ समझ कर रोज़ करे, ख़ास कर जब कि सतसंग न मिले।

प्रश्न ५५—सच्चा प्रेम किसको कहते हैं ?

उत्तर—प्रेम दो क़िस्म का है—अंतरमुखी और बाहरमुखी। जो अपनी तमाम वृत्तियों को, जो इन्द्रियों में लगी हुई हैं, अभ्यास से अंतरमुख करके असली रूप मालिक यानी शब्द में लगावे और उसके रस और आनंद में हर दम भीना और मगन रहे, वह अंतरमुखी प्रेम है। सतगुरु वक्त के बचन और बानी बिलास और लीला देख कर मगन होना और उनके बचन का मन में असर और कम से कम कुछ देर तक ठहराव होना और दिल और दीदे[1] से उनका दर्शन करना और उमंग से सेवा करना, यह प्रेम बाहरमुखी है।

प्रश्न ५६—कितने दिनों तक अभ्यास करने से अन्तर के स्थानों में सुरत पहुँच सकती है ?

उत्तर—इसका नियम नहीं है। यह बात सच्चे शौक़, सच्चे प्रेम और सफ़ाई और निर्मलता दिल और मेहनत पर मुनहसर[2] है। जो उत्तम अधिकारी हो, तो वह बात जो वर्षों में प्राप्त होनी कठिन है, दिनों में हासिल हो सकती है। फिर भी आम तरह पर बीच के दर्जे के सच्चे शौक़ वाले को थोड़े दिनों में कुछ कुछ रस और आनंद आने लगेगा और तीन चार वर्ष अभ्यास करने से उसको आप अन्तर में मालूम हो जावेगा कि कितने दिनों में किस स्थान पर उसकी सुरत गौन अंग से पहुँच सकती है।

प्रश्न ५७—क्या सबब है कि बाज़े अभ्यासियों को बहुत मुद्दत[3] में भी कुछ फ़ायदा नहीं होता ?

उत्तर—वह विधिपूर्वक[4] और पूरे परहेज़ के साथ सतसंग और अभ्यास नहीं करते हैं। असल में उनको अभ्यासी भी नहीं कहना चाहिए, वह बिलकुल बाहरमुख और दिखलावे के आदमी हैं। नहीं

१—आँख। २—निर्भर। ३—समय। ४—नियमों के अनुसार।

तो सच्चा अभ्यास तो ज़रूर और बहुत जल्दी अपना असर और फ़ायदा दिखलाता है। अभ्यासी यानी सतसंगी चार क़िस्म के होते हैं। प्रथम, जो पोथी में पढ़ कर या ज़बानी सुन कर सारी बातें याद यानी कंठ कर लेते हैं, जैसे कोई आदमी वैद्यक की किताब पढ़ कर या उनका हाल ज़बानी सुन कर सिर्फ़ नुस्ख़े याद कर ले। दूसरे, जो सिर्फ़ दिखलावे के वास्ते दो चार मिनिट या ज़्यादा देर तक आँखें बंद करके बैठ जाते हैं, जैसे कोई दवाई मुँह में डाल कर कुल्ली कर दे। तीसरे, जो मेहनत करके अभ्यास करते हैं, पर हमेशा या कभी कभी विषयों आदिक में आसक्त हो जाते हैं जैसे कोई दवा पी भी ले पर पूरा परहेज़ न करे। चौथे, जो अभ्यास मेहनत और सच्चे शौक़ और प्रेम के साथ करते हैं और विषयों आदिक से हमेशा बचते रहते हैं, जैसे कोई दवाई भी पीवे और पूरा परहेज़ भी करे। इस वास्ते चौथे क़िस्म के अभ्यासी पूरा फ़ायदा उठा सकते हैं।

प्रश्न ५८—अभ्यास शुरू करके छोड़ देने या पूरा परहेज़ न करने में क्या नुक़सान है?

उत्तर—सच्चा अभ्यास, जो चौथी क़िस्म में लिखा है, एक बार भी हो जावे, तो फिर कभी नहीं छूट सकता। पर जिनको सच्चा प्रेम या लगन नहीं है और वह कुछ दिनों में अभ्यास करना छोड़ दें, तो उनकी रूहानी तरक़्क़ी बंद हो जावेगी और आनंद जाता रहेगा, पर जितना अभ्यास कर चुके हैं उसका फल ज़रूर मिलेगा और जिस परहेज़ को जितना तोड़ेंगे, उतने ही अंदाज़े से कम आनंद प्राप्त होगा।

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय

गुरु उपदेश

१—राधास्वामी नाम कुल मालिक का नाम है। यही सच्चा और निज नाम है।

२—कुल मालिक शब्द स्वरूप, प्रेम स्वरूप, आनंद स्वरूप और हर्ष स्वरूप है।

३—कुल मालिक सर्व व्यापक है और एक देशी भी है।

४—कुल मालिक ने जीवों पर अति दया करके परम संत सतगुरु रूप धरा और जीवों के उद्धार के निमित[1] संसार में आए।

५—कुल मालिक की दया सब पर है, पर उन पर विशेष[2] है जो उसकी सरन में आ गए हैं और हर दम उसकी याद रखते हैं और वे ही उसके निज प्यारे हैं।

६—कुल मालिक का दर्शन जब हो अंतर ही में होगा।

७—'मैं' और 'तू' सुरत है और सुरत कुल मालिक का अंश है, जैसे सूरज और उसकी किरन।

८—अंश अंशी के संग सदा आनंद में रहती है।

९—यह आनंद संसार में नहीं है, सिर्फ़ कुल मालिक के चरनों में मिल सकता है।

१—लिये। २—ख़ास।

१०–जो सुरत संसार से हट कर कुल मालिक के चरनों में पहुँचे, तो सदा को आनंद में हो जाय।

११–सो यह हटना और सच्चा आनंद पाना सुरत शब्द योग से होगा।

१२–सुरत से अंतर में शब्द को सुनना सुरत शब्द योग है।

१३–शब्द के बराबर रास्ता दिखाने वाला और अँधेरे में उजाला करने वाला और कोई नहीं है और सब रचना का काम शब्द से हो रहा है।

१४–शब्द हर दम हर एक के निज घट में हो रहा है। इस शब्द को ध्वन्यात्मक नाम कहते हैं। सुरत इस शब्द को सुनती हुई निज देश में पहुँच सकती है।

१५–सुरत शब्द मार्ग का भेद संत सतगुरु या साधगुरू या उनके सच्चे प्रेमी सतसंगी से मालूम हो सकता है।

१६–संत सतगुरु वे हैं जिन्होंने अपनी सुरत को सुरत शब्द योग का अभ्यास करके मालिक कुल के धाम में यानी सत्तलोक और राधास्वामी धाम में पहुँचाया है। ऐसे सतगुरु कुल मालिक के ख़ास पुत्र और निज प्यारे हैं।

१७–साधगुरू वे हैं जिन्होंने अपनी सुरत को शब्द योग अभ्यास से त्रिकुटी के परे परब्रह्म पद यानी संतों के दसवें द्वार में पहुँचाया है और आगे चलने का अभ्यास कर रहे हैं।

१८–सतसंगी वे हैं जो सुरत शब्द योग के अभ्यास से मालिक के चरनों में पहुँचने की कोशिश करते हैं और संत सतगुरु की दया लेकर निज धाम में पहुँचनहार हैं।

१९–संत सतगुरु अपने वक़्त का मिलना चाहिए, पिछलों की टेक से कारज नहीं होगा।

२०—संत सतगुरु की दया और मेहर और सुरत शब्द योग की कमाई से मालिक का दर्शन हो सकता है।

२१—संत सतगुरु से सच्ची प्रीति करनी चाहिए और उनको सतसंग, अंतरी और बाहरी, और तन मन धन से सेवा करके प्रसन्न करना चाहिए।

२२—संत सतगुरु की सेवा कुल मालिक की सेवा है और मालिक इसी सेवा से राज़ी है। और किसी की सेवा से काम नहीं बनेगा।

२३—कुल मालिक और संत सतगुरु का भरोसा रखना चाहिए और जहाँ तक हो सके उनके हुक्म और मौज के अनुसार बरतना चाहिए।

२४—संत सतगुरु की मौज मालिक की मौज है, यानी मालिक की मौज में और संत सतगुरु की मौज में कोई फ़र्क़ नहीं है।

२५—संत सतगुरु अपने अपनाये हुए सतसंगियों के हमेशा अंग संग और साथ हैं और उनकी पल पल हर तरह से रक्षा करते हैं।

२६—सतगुरु का जिसने सच्चे मन से दामन पकड़ लिया है और उनके चरनों में सच्ची और गहरी प्रीति और प्रतीति रखता है, वही अपनाया हुआ है। उससे काल डरता है, दूर से ही लुभाता है और डराता है, पास आने की उसे हिम्मत नहीं है।

२७—जहाँ सच्चे मलिक की महिमा और उसके चरनों में प्रेम प्रीति बढ़ाने की और सुरत शब्द मार्ग के भेद की चर्चा हमेशा होती है, सच्चा सतसंग है।

२८—सतसंग की महिमा अपार है, सच्चे मन से चेत कर करना चाहिए।

२९—सतसंग पारस है, इसमें जो आवेगा कंचन[1] हो जावेगा।

१—सोना।

३०—सतसंग से कर्म भर्म दूर होते हैं। बिना इनके दूर हुए अभ्यास नहीं बनेगा और सच्चा उद्धार नहीं होगा।

३१—निःकरम होना चाहिए, इसलिये तन मन धन और उसके सुखों को सतगुरू के अर्पण कर देना चाहिए। अगर नहीं किये जावेंगे, तो दिन दिन कर्म चढ़ते जावेंगे और संसार में आसक्ति बढ़ती जावेगी और उसी क़दर उद्धार मुश्किल हो जावेगा।

३२—जो कुछ काम करे, उसके फल को सतगुरु की मौज पर छोड़ देना चाहिए और जिस तरह वे रक्खें, उसी में ख़ुश रहे और शिकायत न करे। इस तरह भी निःकर्म हो सकता है।

३३—काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, विरोध, मान और बड़ाई मन के विकार हैं और मन इन्हीं में बरतना चाहता है।

३४—यह सब भजन और सेवा में विघ्न करते हैं, इसलिए जहाँ तक हो सके, इनसे बचता रहे और मन की घातों से होशियार रहे, तो इन विकारों से बच सकता है।

३५—मन इन्द्रियों के द्वारा कर्म करता है और सुरत को उनके फल के भोगने के लिए देह और संसार में बाँधे रखता है।

३६—मन का संसार के पदार्थों में असली बंधन है और उनके छोड़ने में दुखित होता है। और जितना ज़्यादा बंधन होगा, उतना ही वियोग से ज़्यादा दुख होगा।

३७—मन के विकारों को दूर करना चाहिए। बिना इनके दूर किये सतगुरु और कुल मालिक का पूरा निश्चय[1] नहीं होगा, लेकिन बिना मेहर सतगुरु के और सुरत शब्द की कमाई के यह विकार दूर नहीं होंगे।

३८—सतसंग अन्तरी, यानी सुरत से ध्वन्यात्मक नाम को निज घट में सुनना और सतसंग बाहरी, यानी सतगुरु संग और उनकी बानी का समझ करके पाठ, मन की गढ़त और सफ़ाई के लिये ज़रूरी हैं।

१—विश्वास।

३९—संसारी पदार्थ नाशमान[1] हैं और उनका सुख स्वतंत्र और ठहराऊ और पूरी शान्ति देने वाला नहीं है। इसलिए इनमें कारज मात्र बरतना चाहिए, सच्ची प्रीति सतगुरु से होनी चाहिए।

४०—संसारी जीवों को मरते वक्त बड़ी तकलीफ़ होती है, क्योंकि जिन पदार्थों में इनका प्यार रहता है छोड़ने पड़ते हैं लेकिन इनका कुछ बल पेश नहीं जाता है।

४१—इसलिए जीते जी मरना चाहिए, यानी सुरत को नेत्रों के स्थान से हटा कर मालिक सच्चे के चरनों में लगाना और निज देश में पहुँचाना चाहिए।

४२—सुरत जब नेत्रों के स्थान पर आती है, संसार और देह से इसका इलाक़ा[2] पैदा होता है।

४३—मनुष्य, विशेष कर कान और आँख इन्द्रियों के द्वारे, संसार में फँसा है और मन तक इन इन्द्रियों के विशेष कर आधीन है।

४४—भक्ति करके इनके आनन्द अन्तर में प्राप्त होंगे। वे सुख ऐसे होंगे जिनसे सच्चे मालिक के चरनों में प्रेम प्रीति दिन दिन बढ़ेगी।

४५—यह आनन्द हमेशा एक से भी नहीं रहेंगे और अगर रहें, तो वे सुख पच जायँगे[3] और भक्ति ढीली होती जायगी और सच्चे मालिक का प्रेम कम हो जायगा और आयन्दा तरक़्क़ी बन्द हो जायगी।

४६—और यह आनन्द मरने के वक्त भी नष्ट नहीं होंगे। अगर नष्ट हो गए, तो संसारी बासना मन में आ जायगी और संसार में जनमना पड़ेगा और चौरासी नहीं छूटेगी।

४७—सो इन दोनों बातों की सम्हाल संत मत में है, यानी सुरत शब्द अभ्यासी को दिन दिन आनन्द बढ़ता जावेगा और मरने के वक्त विशेष आनन्द प्राप्त होगा।

१—अपने आप होने वाला और क़ायम रहने वाला। २—संबंध। ३—पच जायँगे—समाप्त हो जायँगे।

४८–भक्ति अंतरमुख होना इसलिये ज़रूरी है और अगर बाहरमुख हो, तो संत सतगुरु की होनी चाहिए। और किसी की बाहरमुख भक्ति निष्फल[1] है।

४९–गुरुमुख होना चाहिये यानी गुरू की आज्ञा में बरतना चाहिए। मनमुख होने से चौरासी जाना पड़ेगा।

५०–सच्चे मालिक और संत सतगुरु का प्यार और ख़ौफ़ मन में रहना और दिन दिन बढ़ना चाहिए।

५१–हर वक्त ऐसे काम, जिनसे सच्चे मालिक और संत सतगुरु का शौक़ और उनके चरनों में प्रीति और प्रतीति बढ़े, जहाँ तक हो सके करने को तैयार रहे और जिन कामों से ये कम हों, जहाँ तक हो सके नहीं करने चाहिए।

५२–दिन भर में कम से कम दो घंटे मालिक की बंदगी और भजन सुमिरन वग़ैरह में सर्फ़[2] करे और जब जब मौक़ा मिले, वक्त बढ़ाते जाना चाहिए और जब जब संत सतगुरु का संग मिले, चेत कर करना चाहिए।

५३–सच्चे मालिक या संत सतगुरु से संसार में बढ़ती के लिये प्रार्थना नहीं करनी चाहिए। वे जीव की ज़रूरतों को जानते हैं और जैसा मुनासिब समझते हैं, उसे आप ही बख़्शिश करते हैं। जो मन किसी हालत में न माने, तो वक्त भजन के अपनी चाह ज़ाहिर कर दे और उसके फल की प्राप्ति उनकी मौज पर छोड़ दे और जतन करता रहे।

५४–मालिक सच्चे से और संत सतगुरु से उनके चरनों में सच्ची प्रीति और प्रतीति को जब तब माँगना चाहिए, पर जल्दी और हठ नहीं करनी चाहिए, क्योंकि चाह के पूरे न होने से मन अभाव[3] लावेगा और बेपरतीत हो जावेगा।

५५–नर देही सबसे उत्तम है, इसी देह में मालिक की भक्ति हो

१—व्यर्थ। २—ख़र्च। ३—अश्रद्धा।

सकती है। इसलिये ऐसे कर्म नहीं करने चाहिए कि नर देही छूट जावे और चौरासी में जाना पड़े।

५६—भक्ति करने के लिये सच्चा नाम, धाम, रूप और लीला नामी[1] की मालूम होनी चाहिए। तब ध्यान दुरुस्ती से बन पड़ेगा।

५७—कृत्रिम[2] या सिफ़ाती नाम से पूरा उद्धार नहीं होगा। इसके लिए निज नाम का भेद मालूम होना चाहिये। निज नाम की धुन हरदम निज घट में हो रही है और सुरत शब्द योग के अभ्यास से सुनाई दे सकती है।

५८—संसारी पदार्थों के सुखों से सुरत और मन का सन्तोष नहीं होता है, बल्कि तृष्णा बढ़ती है।

५९—सच्चा सन्तोष जब आवेगा जब सुरत और मन को ऊँचे देशों के आनंद प्राप्त होंगे और ज्यों ज्यों ऊँचे स्थान की चढ़ाई होती जावेगी, उसी क़दर आनंद बढ़ता जावेगा और निज देश में पूरा सन्तोष और पूरा आनंद प्राप्त होवेगा।

६०—संत मत बहुत सहज है, यहाँ तक कि इसके अभ्यास को सात वर्ष का लड़का, जवान और अस्सी वर्ष का बूढ़ा भी कर सकता है, मर्द हो चाहे औरत। और चार लफ़्ज़ों में यह शामिल[3] है—सच्चा गुरू, सच्चा नाम, सच्चा संग और सच्चा अनुराग[4]।

६१—मांस और कुल नशे की चीज़ों से हर सतसंगी को परहेज़ करना चाहिये।

६२—अपने मतलब के लिए किसी को मन, बचन, कर्म करके न सतावे और न दुख पहुँचावे। किसी से विरोध और ईर्षा न करे और अपने को अंतर में हमेशा दीन रक्खे।

१—इष्ट। २—नक़ली। ३—सीमित। ४—प्रेम।

६३–संसार में सचाई से बरते और दिखावे के काम जहाँ तक हो सके नहीं करने चाहिए।

६४–फ़िज़ूल इन्द्रियों के भोगों की चाह न उठावे, मुआफ़िक़[1] तौर का बरताव दुरुस्त है।

६५–सन्त मत सब मतों का शिरोमणि है और उनकी जान की जान है। यही सच्चे मालिक का सच्चा मत है। सच्ची मुक्ति इसी से होगी, और कोई मत इसके निमित्त[2] रचा ही नहीं गया।

१—साधारण। २—इसके निमित्त—मुक्ति दिलाने के लिये।

पुस्तकों का सूचीपत्र

ये पुस्तकें मैनेजर पब्लीकेशन्स, दयालबाग़ (आगरा) से मिल सकती हैं

	नाम		मूल्य
	परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित		
१	सारबचन (पद्य)	हिन्दी	७.००
२	सारबचन (गद्य)	,,	(प्रेस में)
	परम गुरु हुज़ूर महाराज रचित		
३	राधास्वामी मत प्रकाश	अंगरेज़ी	१.५०
४	पिलग्रिम्स पाथ (हुज़ूर महाराज के पत्र)	,,	१.५०
५	राधास्वामी मत संदेश	हिन्दी	१.००
६	राधास्वामी मत उपदेश	,,	१.००
७	निज उपदेश	,,	१.००
८	प्रेम उपदेश	,,	१.००
९	सार उपदेश	,,	१.२५
१०	प्रश्नोत्तर	,,	१.००
११	जुगत प्रकाश	,,	२.००
१२	प्रेमबानी भाग १	,,	५.००
१३	,, भाग २	,,	४.००
१४	,, भाग ३	हिन्दी	४.००
१५	,, भाग ४	,,	२.५०
१६	प्रेमपत्र भाग १	,,	४.००
१७	,, भाग २	,,	४.००
	परम गुरु सरकार साहब रचित		
१८	प्रेम-समाचार	,,	१.२५
	राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में अनुवादित पुस्तकें		
१९	राधास्वामी मत प्रकाश	बंगला	१.२५
२०	अमृतबचन (परम गुरु महाराज साहब रचित पुस्तक 'डिस्कोर्सेज़ आन राधास्वामी फ़ेथ' का अनुवाद)	,,	३.००
	परम गुरु स्वामीजी महाराज रचित		
२१	सारबचन	अंगरेज़ी	३.२५

	नाम			मूल्य
	परम गुरु हुज़ूर महाराज रचित			
२२	प्रेम पत्र भाग १		अंगरेज़ी	६.००
२३	,, भाग २		,,	६.००
२४	,, भाग ३		,,	६.००
२५	,, भाग ४		,,	६.००
२६	,, भाग ५		,,	६.००
	हुज़ूर साहबजी महाराज रचित			
२७	यथार्थ प्रकाश भाग १	(विशेष संस्करण)	,,	६.००
२८		(साधारण संस्करण)	,,	३.५०
२९	,, भाग २		,,	५.५०
३०	,, भाग ३	(प्रथम पुस्तक)	,,	५.५०
३१	,,	(द्वितीय पुस्तक)	,,	४.००
३२	जिज्ञासा		,,	१.००
३३	राधास्वामी मत दर्शन		,,	१.००
३४	प्रेम संदेश		,,	१.००
३५	डिस्कोर्सेज भाग १ (सतसंग के उपदेश)		,,	४.००
३६	,, भाग २		,,	४.००
३७	,, भाग ३		,,	३.५०
३८	जतन प्रकाश		,,	१.००
३९	सिलैक्शन्स फ़्राम प्रेम सन्देश		,,	१.००
	राधास्वामी सतसंग सभा के स्वत्वाधिकार में सम्पादित या लिखित पुस्तकें			
४०	फ़ोर लैटर्स (हुज़ूर सरकार साहब)		,,	(प्रेस में)
४१	सिलवरी स्पीचेज़		,,	०.२५
४२	शब्द संग्रह भाग १		हिन्दी	३.५०
४३	,, ,, भाग २		,,	३.५०
४४	संत बानी संग्रह भाग १		,,	१.००
४५	संत बानी संग्रह भाग २		हिन्दी	१.२५
४६	रत्नावली		,,	१.००
४७	दयालबाग़ पैम्फ़्लेट (छोटा)		अंगरेज़ी	०.३७